

## प्राचीन भारतीय साहित्य में विदेशियों के प्रति प्रतिक्रिया और उसका ऐतिहासिक मूल्यांकन

डॉ० श्वेता गुप्ता\*

प्राचीन भारतीय साहित्य में विदेशियों के प्रति भारतीयों मनीषियों और विद्वानों ने समय-समय पर अपने विचार प्रकट किये हैं। विदेशी धर्म अथवा परधर्म का ग्रहण करना अनुचित बतलाया गया है। स्वधर्म, जाति, संस्कृति को ही श्रेष्ठ माना गया है। भगवान श्री कृष्ण ने भी गीता में कहा है कि “भलीभांति अनुष्ठान किये गये, परधर्म की अपेक्षा, गुणरहित भी अनुष्ठान किया गया अपना धर्म कल्याणकर है। परधर्म स्थित पुरुष के जीवन की अपेक्षा स्वधर्म में स्थित पुरुष का मरण भी श्रेष्ठ है, क्योंकि दूर का धर्म भयदायक है—अर्थात् नरक देने वाला है।”<sup>1</sup> यही कारण था कि विदेशी जातियों, उनके धर्मों के प्रति भारतीयों में वह आदर-सम्मान नहीं आ पाया, जो अपनी भारतीय संस्कृति के प्रति था। यह बात केवल भारतीयों के लिए ही नहीं आरोपित होती है, वरन् संसार के सभी प्रभुसत्ता सम्पन्न राष्ट्रों की, अपने देशवासियों से यही अपेक्षा होती है कि वह अपने धर्म का परित्याग न करें। इसी कारण भारत में समय-समय पर आये इन विदेशियों को ‘म्लेच्छ’ कहकर उनसे पृथक रहने की सलाह लगभग सभी प्राचीन भारतीय साहित्य में की गयी है।

म्लेच्छ शब्द मूलतः असीरियन धातु म्लच् से निकला है। इसी म्लच् से जहाँ एक ओर म्लेच्छ शब्द विकसित हुआ, जो कालान्तर में भारतीयों में हेय अर्थ में प्रयोग किया जाने लगा। शतपथ ब्राह्मण में सर्वप्रथम ‘म्लेच्छ’ शब्द का प्रयोग किया गया है।<sup>2</sup> इनका आगमन भारत के उत्तर पश्चिम क्षेत्र से ही हुआ। अतः इस बात की संभावना मानी गयी है कि उस भूखण्ड (उत्तर पश्चिम क्षेत्र) को ‘म्लेच्छ देश’ कहा जाने लगा होगा।<sup>3</sup> मनुस्मृति में भी म्लेच्छ देश को यज्ञीय देश से परे बताया गया है।<sup>4</sup> विष्णु धर्मसूत्र<sup>5</sup> के अनुसार म्लेच्छ देशों में न तो जाना चाहिए और न श्राद्ध कर्म करने

\*काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

चाहिए। उन्होंने इस प्रदेश को आर्यावर्त से परे बतलाया है। साथ ही साथ उन्होंने विदेशियों की भाषा सीखने तथा बोलने पर भी प्रतिबन्ध लगा दिये थे। इसी प्रकार भागवत पुराण<sup>6</sup> भी कहते हैं कि सिन्धु तट, चन्द्रभागा, कश्मीर, कौर्ती क्षेत्र वात्य, म्लेच्छों और शूद्र राजाओं द्वारा उपभोग किये जाएंगे। स्मृतिकार वशिष्ठ<sup>7</sup> ने भी आर्यावर्त तथा म्लेच्छ देश का अलग-अलग रेखांकन किया है। उनके अनुसार जो हिमालय तथा विन्ध्य के मध्य में है, जो पूर्व-पश्चिम में समुद्र से घिरा है तथा जहाँ कृष्ण मृग स्वावाभिक विचरण करते हैं, वह आर्यावर्त प्रदेश है।

भारत में आने वाले इन विदेशियों के आचार-विचार, भाषा, रहन-सहन आदि भारतीयों से भिन्न होने के कारण समाज के प्रबुद्ध वर्गों द्वारा उनका प्रतिरोध किया गया। भारतीय साहित्य में यवन, म्लेच्छ, राक्षस जैसे शब्द उन प्रवृत्तियों को प्रकट करने के लिए रूढ़ रूप में प्रयुक्त किये गये, जो भारतीय संस्कृति के सामने चुनौती, संहार और विरोध के रूप में उपस्थित हुई थी। भारतीय साहित्य में विदेशियों का उल्लेख पाणिनी काल (आठवीं अथवा सातवीं ईसा पूर्व) से ही मिलने लगा था। वे अपनी प्रशासनिक तथा सामाजिक नीतियों के कारण जो भारतीयों से सर्वथा पृथक थी, भारतीयों की दृष्टि में समाज विध्वंसक थे। है। इन विदेशी राजाओं में राज्याभिषेक की परम्परा नहीं थी। अतः अनाभिषिक्त होने के कारण ये भारतीयों के अनुसार विधि सम्मत राजा नहीं समझे जाते थे। भागवत पुराण<sup>8</sup> के अनुसार ये रजो तथा तमो गुण से युक्त असंस्कृत तथा क्रियाविहीन थे तथा राजा के रूप में ये (म्लेच्छ) प्रजा के सर्वस्व का हरण एवं भक्षण करेंगे। वायु पुराण<sup>9</sup> के अनुसार “स्त्री बालकों का वध करने वाले ये राजा लोग, परस्पर मारकाट मचाकर पृथ्वी पर शासन करेंगे तथा त्रिवर्ग से विहीन, ये म्लेच्छ परायण राजा लोगों में जाकर मिल जाएंगे।” भारतीय समाज में इन्हें सबसे निम्न वर्ग प्राप्त था। समाज के कुलीन वर्गों में इनकी गणना नगण्य थी। भारतीय चातुर्वर्ण्य व्यवस्था में जो स्थान शूद्रों तथा अन्त्यजों का था, वहीं स्थान इन विदेशी जातियों को भी दिया गया था। इन विदेशी जातियों के बारे में महाभारत के वनपर्व<sup>10</sup> में कहा गया है कि “ये लोग स्त्रियों, बच्चों, असहायों, वृद्धों के ऊपर भी किसी प्रकार की सहानुभूति नहीं रखते थे। साथ ही साथ यह स्त्रियों का बलपूर्वक उपभोग भी करते थे। रोने और चिल्लाने पर भी दया भाव नहीं रखते हैं। अहंकार तथा अभिमान में डूबे ये राजा, प्रजा की रक्षा करने में असमर्थ थे। वे केवल लूट पाट में ही लगे रहते थे और प्रजा को उत्पीड़ित करने में ही उन्हें आनंद आता था।” इन सूत्रों के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय समाज के हृदय में उनके प्रति अत्यन्त रोष व्याप्त था।

भारतीयों द्वारा इस प्रकार के मन्तव्यों से एक बात प्रकट होती है कि वे विदेशियों की सामाजिक परम्पराओं और जीवन शैली से प्रसन्न नहीं थे। इसी कारण उन्होंने उन्हें अपने समाज से पृथक रखा। साथ ही इस बात से भी इंकार नहीं किया जा सकता कि कोई भी विदेशी जाति जब भी किसी दूसरे देश पर राजनीतिक प्रसार हेतु आक्रमण करती है तो अपने अस्तित्व हेतु हिंसात्मक कार्यप्रणाली अवश्य अपनाती है। आक्रमण के दौरान हिंसा और लूटपाट तो स्वाभाविक रूप से होते हैं। प्रारम्भिक विदेशी आक्रमणकारी यवन, शक और कुषाणों के आक्रमण निःसंदेह हिंसात्मक रहे होंगे (किन्तु अपने अस्तित्व को बनाए रखने तथा भारत पर अपनी राजनीतिक पताका फहराने हेतु उनके लिए आवश्यक भी थे।) दूसरी तरफ भारतीयों द्वारा उनके लिए म्लेच्छ, पापी शब्द का प्रयोग अपने रोष को व्यक्त करने का साधन मात्र रहा होगा। जो उन विदेशियों के प्रति नहीं वरन् उनके समाज में प्रचलित सामाजिक नियमों के प्रति थे। इनके रीति-रिवाज, वेषभूषा, खान-पान भारतीयों से पृथक ही नहीं बल्कि विपरीत भी थे। भारतीय साहित्य में ऐसे कई प्रमाण मिलते हैं जिनमें विदेशियों की रीति रिवाजों और परम्पराओं को नैतिक दृष्टि से अनुचित बतलाया गया है। शकों में प्रचलित प्रथा के अनुसार पिता की मृत्यु के बाद पुत्र अपनी माता से विवाह कर लेता था। इस सम्बन्ध में ये अपने पड़ोसी हूण समाज में प्रचलित रीतियों का पालन करते थे। जिनमें पिता की मृत्यु के बाद पुत्र, अन्तःपुर की सभी स्त्रियों से विवाह कर लेता था।<sup>11</sup>

बी0 एन0 मुखर्जी के अनुसार बर्दसनीज (2-3ई0) ने अपनी पुस्तक 'बुक आफ द लॉ आफ द कन्ट्री' में कुषाण स्त्रियों के बारे में लिखा है कि बैक्ट्रियनों में जो कुषाण स्त्रियाँ हैं, वे पुरुषों के कपड़े पहनती हैं तथा स्वर्णाभूषणों से सुसज्जित होकर घुड़सवारी करती हैं, वे अपनी चारित्रिक शुद्धता का ख्याल नहीं रखती तथा अपने दोषों और स्वदेश से आये हुए अजनबियों के साथ सम्बन्ध स्थापित करती हैं।<sup>12</sup> महाभारत के कर्ण पर्व<sup>13</sup> में भी बतलाया गया है कि यवनों के शासन क्षेत्र में रहने वाले सिंधु तथा पंजाब के निवासी धर्म से विहीन हो रहे थे। उनमें यज्ञादि की परम्परा समाप्त हो रही थी। वे आहार में, भुने हुए जौ तथा लहसुन के साथ, गोमांस तथा गुड़ से बनी मदिरा पीकर मतवाले बने रहते थे। विदेशी समाजों में प्रचलित नारी की स्वच्छन्दता का प्रभाव भारतीय समाज पर पड़ रहा था, वह अति निन्दनीय था।<sup>14</sup> सम्भवतः पंजाब तथा सौराष्ट्र के लोगों में भी इसी प्रकार का चारित्रिक पतन होने लगा। इस प्रकार की चारित्रिक शिथिलता

और अनैतिकता इन्हीं विदेशियों के कारण भारतीय समाज में फैल रही थी। जो बहुत दिनों तक उनके अधिकार क्षेत्र में थे।<sup>15</sup>

विदेशियों द्वारा अपनाई गयी ये रीतियाँ भारतीयों की दृष्टि में हेय और निम्न थी। जिसके कारण भारतीय विदेशियों को हेय दृष्टि से देखते थे। सम्भवतः भारतीय समाजशास्त्रियों को यह लगने लगा कि कहीं यह विदेशी जातियाँ भारतीय चातुर्वर्ण्य व्यवस्था को ही नष्ट न कर दें। समाज का रूढ़िवादी उच्च वर्ग उन्हें हिन्दू चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था का शत्रु मानता था। इसीलिए भारतीयों ने इनसे पृथकता बनाए रखना ही उचित समझा। इस प्रकार भारतीय स्मृतिकारों ने चातुर्वर्ण्य व्यवस्था को नष्ट करने तथा समाज में अनैतिक व्यवहारों को फैलाने का दोषी मानते हुए विदेशी जातियों का सामाजिक बहिष्कार किया और उनके साथ किसी भी प्रकार के सम्बन्ध रखने पर प्रतिबन्ध लगा दिये।<sup>16</sup>

किन्तु कालान्तर में हम देखते हैं कि भारतीय और विदेशियों के मध्य एक सामंजस्य की स्थिति उत्पन्न होती है। चूंकि इन्हें प्रशासन का अधिकार प्राप्त था, अतः विजेता होने के कारण एक प्रजा के रूप में इनकी आज्ञा का पालन करना आवश्यक हो गया था। के0 पी0 जायसवाल<sup>17</sup> के अनुसार ये विदेशी शासक भारतीय राजा से कम, किन्तु, ब्राह्मणों की सामाजिक तथा धार्मिक प्रतिष्ठा से बहुत कंपित थे। इनके समाज में चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था नहीं थी, न ही वे भारतीय विचित्रता को समझ पाते थे। शायद इसीलिए उन्होंने इसे नुकसान पहुंचाने का प्रयास नहीं किया। ये विदेशी राजनीतिक तथा आर्थिक तौर पर काफी मजबूत स्थिति में थे, अतः ये भारतीय सामाजिक व्यवस्था के कुलीन और संभ्रात वर्गों द्वारा उपेक्षित नहीं किये जा सकते थे। इसी कारण धीरे-धीरे उनके बीच के वैचारिक संघर्ष समाप्त होने लगे और ब्राह्मणों द्वारा उन्हें समाज में सम्मिलित किये जाने के विधान किये जाने लगे। आलोक पाराशर<sup>18</sup>का भी कहना है कि आपसी सामंजस्य का एक मुख्य कारण विदेशियों की राजनीतिक तथा आर्थिक सम्पन्नता थी, जिसके बिना ब्राह्मण दरबारों में नहीं रह सकते थे। अतः धीरे-धीरे ब्राह्मणों ने उन्हें म्लेच्छ कहना बंद किया। स्मृतिकारों ने धीरे-धीरे इन विदेशियों के प्रति अपना दृष्टिकोण बदल दिया। उनकी दृष्टि में वे अब म्लेच्छ नहीं रह गये थे। इस प्रकार धीरे-धीरे ये विदेशी जातियाँ भारतीय समाज में घुलने मिलने लगी। दूसरी ओर भारतीयों ने भी विदेशी संस्कृति के कई तत्वों को अपने सांस्कृतिक जीवन में स्थान दिया। कालान्तर में दोनों ही संस्कृतियाँ एक दूसरे की पूरक बन गयीं।

## सन्दर्भ :-

1. भगवतगीता 3:35, श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुतिष्ठतात्। स्वधर्मे निर्धनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।।
2. शो ब्रा0, 3:2:24, संपा0 बेबर, काशी सवत् 1994-7, पृ0 23-4
3. अब्दुलरहमान, संदेशरासक, अनु0 वी0 त्रिपाठी और एच0 पी0 द्विवेदी, बम्बई, 1965, पृ0 77-85.
4. मनु0, कृष्ण सारस्तु चरति मृगो यत्र स्वभावतः। संः येज्ञो यज्ञियो देशो म्लेच्छदेशस्ततः।।3:23।।
5. वि0 ध0 सू0, 84:1-2 उदघृत- यू0 पी0 थपिलयाल, फारेन एलीमेन्ट इन एशियन्ट इण्डियन सोसाईटी, पृ0 45-6
6. भा0 पु0, 12:1-39 सिन्धोस्तर चन्द्रभांगा कौर्ती कश्मीरमंडलम्। भोक्षयन्ति शूद्रा ब्रात्याद्या म्लेच्छाश्चब्रह्मवर्चसः।।
7. व0 स्मृ0 2:1, यथा-दक्षिणेण हिमवत उत्तरेण विंधध्यस्य ये धर्मा ये चाचारास्ते सर्वे प्रत्येतव्याः न हान्ये प्रतिलोक कल्पधर्माः। एतदार्यावर्तमित्याचक्षते गंगा यमुनयोरंतरात्येके। यावद्वा कृष्णमृगो विचरति तावद्ब्रह्मवर्चसमिति।।
8. भा0 पु0, यथा- असंस्कृताः क्रियाविहीनां रजसा तमसा वृताः। प्रजास्ते भक्षयिष्यन्ति म्लेच्छाः राजन्यरूपिणः।।12:1:42।।
9. वा0 पु0, उदितोदितं वंशास्ते उदितास्तामितास्तथा। भविष्यन्ति पर्याये कालेन पृथिवोक्षितः।। विहिनास्तु भविष्यन्ति धर्मतः कामतोध्यर्तः।99:391-2।। तैविमिश्राजन्यदाम्लेच्छाचाराश्च सर्वशः।।99:391-2।।
10. महा0 वनपर्वः- प्रायशं कृपणानां हि तथा बन्धुमतामापि। विधवानां च वित्तानि हरिष्यन्ति हि मानवाः।। अरक्षिता लुब्धाश्च मानां ह करदर्षिताः। केवलं दण्डरूप्यो भविष्यन्ति युगक्षये।। आक्राम्याक्रम्य सांधुना दराश्चापि धनानि च। भोक्षयन्ते निरनुक्रोशा रुदतामापि भारत।। 190:30,34-5।।
11. मैकगर्वन, अर्ली अम्पायर ऑफ सेन्ट्रल एशिया, उदघृत, प्रशान्त जायसवाल, शककालीन भारत, इलाहाबाद, 1963, पृ0 92
12. बी0 एन0 मुखर्जी, द राइज एण्ड फाल आफ कुषाण अम्पायर, पृ0 342-3

13. महा0 कर्णपर्व, यथा-पाचांना सिन्धुष्ठांना नदीनां येघ्तराश्रिताः। तान् धर्मबाहयानाशुचीन ब्राहीकानापि वर्जयेत्।। धाना गोडपासंव पीत्वा गोमांस लशुनैः सह। अपूपमांसवात्यानामाशिनः शीलवर्जिताः।। 8:30,10-1,14-5।।
14. बुद्ध प्रकाश, पोलिटिकल एण्ड सोशल मूवमेन्ट इन एशियन्ट पंजाब, दिल्ली, 1964, पृ0 224
15. एस0 गुप्ता, प्राचीन भारत में सामाजिक इतिहास, जयपुर, 2000, पृ0 147
16. वि0 पु0, 5:38-28; महा0 वनपर्व; 108:35-6; भा0 पु0; 2:4:18
17. के0 पी0 जायसवाल, अंधकारयुगीन भारत 150-300ई0, पृ0 87-8
18. आलोक पराशर, एटिट्यूड टूवर्डस द म्लेच्छ इन अर्ली नार्दन इण्डिया अप टू सेन्चुरी 600 ए0 डी0 आई0 एच0 आर0, जि0 9, 1982-3, पृ0 26

